International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.42
IJSSER 2026; 8(1): 20-27
www.socialsciencejournals.net
Received: 25-11-2025
Accepted: 29-12-2025

डॉ. पिंकी गुप्ता
सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. पिंकी गुप्ता
सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

प्राचीन भारत में परिवहन के प्रमुख साधन (बौद्ध साहित्य के विशेष संदर्भ में)

पिंकी गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.33545/26649845.2026.v8.i1a.486

सारांश

प्राचीन भारत में परिवहन के साधनों का विकास मानव सभ्यता की प्रगति का द्योतक है। उस समय परिवहन केवल भौतिक गतिशीलता का साधन नहीं था, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का आधार भी था। व्यापारिक मार्गों पर वस्तुओं का आदान-प्रदान, राजकीय और सैन्य अभियानों की सफलता, धार्मिक यात्राओं का विस्तार तथा सांस्कृतिक संपर्क इन सभी में परिवहन साधनों की केंद्रीय भूमिका रही। परिवहन" शब्द दो भागों से बना है – "परि" = चारों ओर या सभी दिशाओं में "वहन" = ले जाना, ढोना या स्थानांतरित करना इस प्रकार परिवहन का अर्थ है वस्तुओं, व्यक्तियों या संसाधनों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने की क्रिया। चुल्लवग्ग में यानशब्द का उल्लेख मिलता हैं जिसे याति-यायेन भी कहा गया है।[1] दीघनिकाय में हस्तियान, अश्वयान, दिव्ययान का वर्णन मिलता है।[2] यान सभी प्रकार के परिवहन के लिए उपयोग में लाया जाता था, यथा यात्री गाड़ी, पशु को ले जाने वाली गाड़ी तथा माल ढ़ोने वाली गाड़ी इत्यादि। सभी गाड़ियों का उपयोग सामान ढ़ोने तथा यात्रा के लिए किया जाता था। पाराजिक में यानट्ठ शब्द आया है जिसका अभिप्राय यान में लादे माल से लगाया जाता है। प्रारम्भ में मनुष्य स्वयं भार वहन (ढ़ोने) का साधन था और ये भार ढ़ोने के लिए अपने हाथ या सर का प्रयोग करता था। समय परिवर्तन के साथ-साथ अपने सुविधा के लिए निरंतर आवश्यकता का अनुभव कर मानव ने परिवहन के साधनों का खोज किया तथा भार वहन करने के लिये पशुशक्ति का उपयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार पशु परिवहन का साधन बना तथा मानव व पशुशक्ति दोनों परिवहन के प्रमुख साधन बन गये परन्तु बाद के कालों में व्यापार की उन्नति के साथ-साथ परिवहन के साधनों में और भी उन्नति हुयी। मनुष्य एवं पशुओं के परिवहन क्षमता में वृध्दि करने के लिए कुछ प्राविधिक सुविधाएँ धीरे-धीरे उपयोग में लायी जाने लगीं। मनुष्य के इस अनुभव ने उसे प्रोत्साहित किया कि वह और अधिक भार को खींचकर अथवा किसी पट्ट पर रखकर आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सके यथा बैलगाड़ी, रथ इत्यादि का उपयोग प्रारम्भ हुआ। प्राचीन भारत में परिवहन के रूप में स्थल व जल दोनों मार्गों का उपयोग किया जाता था। स्थलीय मार्गों में जिन साधनों का उपयोग होता, उनमें बैलगाड़ी, रथ, पालकी, बहँगी, हत्थवट्टक जैसे मानव-निर्मित साधन प्रचलित थे। भारवाही पशुओं में बैल, घोड़ा, गदहा, खच्चर, बकरी, भेड़ तथा ऊँट इत्यादि थे तथा जलीय साधनों में नाव व इसके विभिन्न छोटे-बड़े प्रकार का प्रयोग किया जाता था। इसपर सामान लादकर व्यापार करने का उल्लेख मिलता हैं। भौगोलिक विविधता के अनुसार साधनों का चयन किया जाता था। मैदानी क्षेत्रों में बैलगाड़ी और रथ, पहाड़ी क्षेत्रों में खच्चर और मानव श्रम, तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों में ऊँट प्रमुख साधन थे। इस प्रकार प्राचीन भारत के परिवहन साधन केवल आवागमन की सुविधा तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे उस युग की आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सभ्यता के विस्तार के मूल आधार थे।

कुटशब्द: बौद्ध साहित्य में स्थलीय साधनों में बैलगाड़ी, रथ, शिविका, पालकी, बहंगी तथा भारवाही मनुष्य तथा स्वतंत्र रूप से भार ढ़ोने व खीचने वाले पशुओं में बैल, घोडा, गधा, ऊंट, खच्चर, इत्यादि का उल्लेख मिलता हैं

प्रस्तावना

बैलगाड़ी या शकट: प्राचीन भारत में बैल न केवल कृषि कार्यों के लिए उपयोगी थे, बल्कि वे परिवहन के प्रमुख साधन भी थे। बैलगाड़ियाँ ग्रामीण और शहरी जीवन को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती थीं। इनसे अनाज, वस्त्र, वाणिज्यिक सामान और यात्रियों का सुरक्षित परिवहन संभव होता था। धार्मिक यात्राओं, व्यापारिक मार्गों और सामाजिक आयोजनों में बैलगाड़ियों का विशेष महत्व था। इस प्रकार बैल-आधारित परिवहन ने प्राचीन भारतीय समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। बैलगाड़ी एक पारंपरिक गाड़ी है जो बैलों द्वारा खिची जाती है। इसके लिए बौद्ध साहित्य में बैलगाड़ी तथा शकट पर्याय के रूप में उल्लेख मिलता है। दीघनिकाय,[3] सङखपाल जातक[4] तथा मिलिन्दपन्हों [5] में शकट या बैलगाड़ी का वर्णन प्राप्त होता है। शकट बोझा ढ़ोने की बड़ी गाड़ी तथा उसमें जुतने वाले तगड़े बैल को शाकट कहते थे। यह मजबूत काष्ठ वाली तथा वज्रकिल और लौह पट्ट से युक्त गाड़ी थी, जो भार वहन करने में समर्थ समझी जाती थी। इसका उपयोग दैनिक जीवन में व्यापार और अन्य कार्यों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वस्तुओं को लाने व ले जाने वाले एक प्रमुख वाहन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। प्राचीन भारत में परिवहन के लिए जिन स्थलीय साधनों का उपयोग किया जाता था, उसमें यह एक प्रमुख साधन के रूप में प्रचलित था।

अतः प्राचीन समय में आन्तिक व्यापार मुख्य रूप से बैलगाड़ियों के ही माध्यम से होता था। यहाँ के व्यापारी इन शकतो में माल लादकर बहुत दूर–दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। जातक कथाओं में पूर्व से पश्चिम तक व्यापारियों को 500-1000 बैलगाड़ियों को लेकर यात्रा करने का उल्लेख मिलता है। कण्ह जातक[6] में एक सार्थवाह पुत्र को 500 शकट लेकर जाने का उल्लेख मिलता है। वहीं अपण्णक जातक तथा वण्णुपथ जातक में मूल्यवान सामान शकट पर रखकर बैलों से जोत विक्रय के लिये जाने का उल्लेख मिलता है। आनुसासिक जातक में राजपथ पर बैलों वाली गाड़ियों को सामान लादकर तेजी से आने का वर्णन प्राप्त होता है। महावग्ग और मिलिन्दपन्हों में उल्लेख आया है कि एक बार जनपद निवासी एक व्यक्ति नमक, तेल, चावल और अन्य खाद्य सामग्रियाँ बैलगाड़ी में लाद ले गया था।[7] दीधनिकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त में प्यास से व्याकुल भिक्षुओं और आनन्द को तथागत में पानी पिने से मना किया था क्योंकि 500 गाडियों द्वारा नदी पार किये जाने से नदी का पानी गन्दा हो गया था[8] इनका नेतृव सार्थ करते थे तथा इन व्यापारिक सार्थों को शकट–सार्थ कहा जाता था। इसे साधारणतया दो बैल खीचते थे। अंगुत्तरनिकाय से भी वर्णित है कि शकट में दो बैल जोते जाते थे।[9] परन्तु कभी-कभी एक व दो से अधिक बैल भी जोते जाते थे। इसमें कभी–कभी गाय का भी प्रयोग किया जाता था। महावग्ग में वर्णित है कि षष्ठ निसग्गवर्गी भिक्षु एक गाड़ी में दो बैल और एक गाय को जोत कर गाड़ी से यात्रा कर रहे थे।[10] अर्थशास्त्र में बैलों के साथ ही भैसों से खिची जाने वाली गाड़ियों का भी उल्लेख है।[11] कण्ह जातक में ऐसे बैलों का उल्लेख प्राप्त होता है कि जिनकी क्षमता एक समय में एक से अधिक गाड़ियों को खीचनें की थी।[12] सम्भवतः ऐसा लगता है कि अत्यधिक पुष्ट एवं मजबूत बैलों को एक से अधिक गाड़ियों को खींचने में उपयोग होता रहा होगा। कभी–कभी गाड़ियों में एक ही बैल को जोता जाता था ऐसी बैलगाड़ियों का किराया अधिक देना पड़ता था। ख़राब या टूटी–फूटी सड़कों पर गाड़ियों को खींचने के लिए एक से अधिक बैलों की आवश्यकता होती थी। जातक कथाओं में दो प्रकार की बैलगाड़ीयों मालवाहक बैलगाड़ी तथा सवारी बैलगाड़ी का वर्णन प्राप्त होता है। नन्दिविलास, वण्पथणु, आनुसनिक जातक इत्यादि में मालवाहक बैलगाड़ी तथा महाजनक जातक[13] व वातमिग जातक[14] में सवारी बैलगाड़ी जिसमें पर्दा लगा होता था, का वर्णन प्राप्त होता है। इस पर सवारीवाहक आराम से बैठकर अन्य स्थानों पर जाते थे। बौद्ध साहित्य में शकट के बनावट के सम्बन्ध में कुछ विवरण प्राप्त होते है। संयुक्तनिकाय में गाड़ीवान को समतल राजमार्ग छोड़कर ऊचे-निचे विषम मार्ग पर अपनी गाड़ी चलाकर बैलों से अपनी गाड़ी का घुरा तुड़ा कर चिन्ता में पड़ जाने का उल्लेख मिलता है।[15] मिलिन्दपन्हों में अत्यधिक भार के कारण शकट के नाभी को फटने, नेमि धँसने तथा गाड़ी टूट जाने का वर्णन मिलता है।[16] द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व से प्राप्त चित्रों के समूहों के कला चित्रों से शकट की संरचना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। भरहुत स्तूप के भित्ति–चित्रों में एक गद्दीदार चौखूटी बैलगाड़ी दिखायी देता हैं, जिसमें दो पहियें लगे हुए है। गाड़ी से बैल खोल दिए गए है और वे जमीन पर बैठे हुए है। बैलगाड़ी हाँकने वाला व्यापारी पीछे बाँयी ओर बैठा है। इससे बनावट की जानकारी प्राप्त होती है। यह गाड़ी दो ईषादण्ड युक्त है। इसमें पटरियों का प्रयोग हुआ है। दोनों ईषादण्ड युग से बधे हुए है। इसके चक्के आकार में सोलह तीलियों संयुक्त है तथा चक्के की नेमी छिद्र करके फँसाये गये है।[17] मौर्य साम्राज्य के विकास के साथ ही साथ यातायात के साधनों का भी विकास हुआ। शकटो को उनकी गति के आधार पर एक दूसरे से अलग किया जा सकता है। गोलिंग शकट का एक विशेष प्रकार था। यह एक मध्यम आकार की तथा बैलों द्वारा खिचीं जाने वाली गाड़ी थी। लघुयाँन एक प्रकार की छोटी गाड़ी थी। इसका उपयोग आवागमन के लिए होता था।

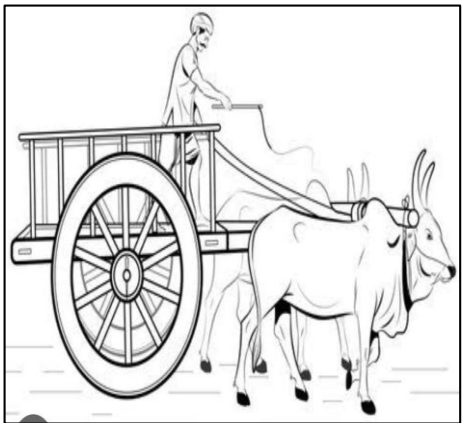

खिलौना गाड़ी- काशी राजघाट

रथ: प्राचीन भारत में परिवहन के साधन केवल भौतिक आवागमन तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक संरचना, तकनीकी विकास, धार्मिक आस्थाओं और राजनीतिक शक्ति के प्रतीक भी थे। इन साधनों में रथ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी रहा है। रथ प्राचीन भारतीय सभ्यता की उस गतिशीलता को दर्शाता है, जिसने युद्ध, व्यापार, राजकीय प्रशासन और धार्मिक अनुष्ठानों को संगठित स्वरूप प्रदान किया। भारत में रथों के अस्तित्व और प्रयोग के प्रमाण हमें पुरातात्त्विक खोजों से स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। महाराष्ट्र के दायमाबाद से प्राप्त ताँबे का रथ, जो उस काल की उन्नत धातु तकनीक और पहियायुक्त वाहनों की समझ को दर्शाता है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के सनौली (बागपत) क्षेत्र में मिले दफ़न स्थलों से प्राप्त ठोस पहियों वाले रथ अथवा रथ-सदृश संरचनाएँ यह संकेत देती हैं कि रथ केवल युद्ध का साधन ही नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा और शक्ति का भी प्रतीक था। पाली साहित्य में रथ एक विशेष प्रकार का वाहन माना जाता था। इसकी प्रसिद्धि तत्कालीन समय में अत्यधिक थी जिसकारण इसके नाम पर मार्ग का नाम रथमार्ग ही पड़ गया। भूरीदन्त जातक में रथियति या रथ मार्ग का वर्णन प्राप्त होता है।[18] नाठ्ठिनिका जातक में रथवाहन का उल्लेख मिलता है। इसका उपयोग राजकीय सवारी तथा समाज के समृद्ध लोगों द्वारा अनेक अवसरों उत्सव, पर्व, खेल, युद्ध, शिकार, यात्रा तथा व्यापार इत्यादि में किया जाता था। विधुर जातक में रथों का उपयोग राजकीय उपयोग में होने का वर्णन प्राप्त होता है। चम्पेय जातक में व्यापार में गाड़ी व रथ दोनों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।[19] इसमे कहा गया है कि गाड़ी में सामान लदवा और स्वयं रथ में बैठ जनपद से वाराणसी नगर चलने का वर्णन प्राप्त होता है। सत्तिगुम्ब जातक में घोड़ा, बैल से जुते रथ तथा विधुर जातक[20] में गाय, बैल, हाँथी व घोड़े से जुते रथों का वर्णन मिलता हैं। पाणिनि ने रथ में जोते जाने वाले पशुओं के नाम के आधार पर रथों का नामकरण किया है जैसे अश्वरथ, उष्ट्ररथ, और गर्दभरथ आदि।[21] अश्वों द्वारा खिचे जाने वाले रथों का प्रयोग पाली साहित्य में बहुतायत मिलता है। मज्झिमनिकाय[22] में घोड़े से जुते उत्तम प्रकार के रथों तथा साधीन जातक[23] व महावेस्सन्तर जातक[24] में एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने-जाने के लिये रथों का प्रयोग होता था, जिसमें अपने सामर्थ्य के अनुसार सैन्धव घोड़ा इत्यादि से निर्मित रथों का वर्णन आया है। महानरद-काश्यप जातक में सैन्धव घोड़े से जुते रथों का वर्णन है तथा इनको विभिन्न वस्तुओं से सजाये जाने का वर्णन प्राप्त होता है।[25] तत्कालीन समाज में बड़े पैमाने पर रथों उपयोग होता था। अतः बौद्ध साहित्य में रथ समूहों का वर्णन

बड़े पैमाने पर प्राप्त होता है। रथों की परंपरा केवल भौतिक अवशेषों तक सीमित नहीं रही, बल्कि भारतीय धार्मिक और स्थापत्य कला में भी इसका सशक्त प्रतिबिंब दिखाई देता है। कोणार्क का सूर्य मंदिर, महाबलीपुरम, एलोरा, तथा कर्नाटक का हम्पी जैसे स्थलों पर बने रथाकार मंदिर और शिल्पांकन इस बात का प्रमाण हैं कि रथ को दैवीय शक्ति और ब्रह्मांडीय गति से जोड़ा गया। हम्पी का प्रसिद्ध विट्ठल मंदिर का पत्थर का रथ इस परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ रथ को स्थायी स्थापत्य रूप प्रदान किया गया । इस प्रकार, पुरातात्त्विक साक्ष्य, साहित्यिक विवरण और स्थापत्य उदाहरण मिलकर यह सिद्ध करते हैं कि रथ प्राचीन भारत में केवल एक परिवहन साधन नहीं था, बल्कि वह सभ्यता की तकनीकी दक्षता, सांस्कृतिक चेतना और ऐतिहासिक निरंतरता का सजीव प्रतीक था

सनौली (बागपत) रथ का प्राचीनतम साक्ष्य दायमाबाद से प्राप्त ताँबे का रथ

साथ ही साथ बौद्ध साहित्य में रथ निर्माण की प्रक्रिया एवं रथ से जुड़ी हुई सूक्ष्म सूचनाओं का व्यापक रूप से उल्लेख मिलता है । छठी शताब्दी ईसा-पूर्व के आस-पास रथों का निर्माण बढ़ई या रथकार द्वारा किया जाता था । इस समय अधिकांशतः लकड़ी के रथ निर्मित होते थे परन्तु मट्ठकुण्डली जातक में सोने, चाँदी, मणि तथा लोहा से निर्मित रथों का उल्लेख मिलता हैं।[26] अंगुत्तरनिकाय के सचेतन सूत्र में वाराणसी के सचेतन नामक राजा द्वारा रथकार को बुलाकर रथ निर्माण करने की जानकारी मिलती है ।[27] फन्दन जातक में रथ को बनाने के लिये बढ़ई को जंगल में जाने तथा वहाँ से फन्दन नामक वृक्ष का लकड़ी काट कर वाराणसी में ला रथ के पहियों (चक्र) के डण्डों, चक्रनाभि, चक्रघेरे इत्यादि के लिये इस लकड़ी के उपयोग का वर्णन है । अंगुत्तरनिकाय में वर्णित है कि रथ एवं इसके चक्र निर्माण में पर्याप्त समय एवं अनुभव की आवश्यकता पड़ती थी । बढ़ई रथ बनाते समय सबसे पहले रथचक्र, ईषाचक्र, अक्ष, युग व कुबर इत्यादि को बनाता था । एक रथ निर्माण में कई महीने लग जाते थे। कम समय से निर्मित रथ के नेमी और नाभि में दोष आ जाते थे तथा इसके टेढ़े होने से रथ असंतुलित और कम गतिमान होता था । उत्तम और दोषमुक्त रथ बनाने में छह माह का समय लग जाता था । आपस्तम्ब शुल्व सूत्र के अनुसार अच्छे रथ की नाप निम्न है- ईषा की लम्बाई 188 अंगुल = पौने बारह फुट, धुरे की लम्बाई 104 अंगुल= 6 फुट, जुएँ की लम्बाई 86 अंगुल= 5 फुट 4 इंच ।[28] इस समय तक रथ बनाने की चार अवस्थाएँ थीं । सबसे पहले बढ़ई रथ के एक-एक भाग जैसे रथचक्र, ईषाचक्र, अक्ष, युग इत्यादि को अलग-अलग बना लेता था । द्वितीय चरण में उन्हें एक में ठोकता और मिलाता था । तीसरी अवस्था में रथ को चमड़े और कपड़ों से मढ़ा जाता था । इसको मढ़ने के लिए वस्त्र, कम्बल तथा चर्म इत्यादि का उपयोग होता था । अंगुत्तरनिकाय में विविध सुवर्ण अलंकारों में मण्डित, सुवर्णध्वजायुक्त तथा सुवर्णजाल निर्मित लावादा से आच्छादित चौरासी हजार सिंहचर्म, व्याघ्रचर्म तथा दीपीचर्म से आवृत्त और सुवर्णजाल से आच्छादित हजार रथों का उल्लेख मिलता है ।[29] सोनक जातक में व्याघ्र और चीते से मढ़े जाने वाले 60 हजार रथों का उल्लेख मिलता है । महाजनक जातक में दीप और व्याघ्र रथों का उल्लेख हुआ है। फन्दन जातक में रथ के पहिये के घेरे में लोहे की जगह चमड़ा उधेड़ने का वर्णन मिलता है । इसमें वर्णित है कि जिससे रथ मजबूत होता है । चीते व व्याघ्र या बाघ से के चमड़े से विशेष रथ मढ़े जाते थे। ऐसे रथ वैयाघ्र रथ कहलाते थे । संयुक्तनिकाय में वर्णित है कि रथों में बैजयन्त रथ प्रसिद्द है । महावेस्सन्तर जातक में राजकुमार वेस्सन्तर राजा को अन्य स्थानों पर जाते समय 700 बैजयन्त रथ के साथ जाने का वर्णन प्राप्त होता है । बौद्ध साहित्य में कम्बल से मढ़े हुये रथों में पाण्डुकम्बली रथ का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है । पाणिनि ने भी पाण्डुकम्बली रथ का वर्णन किया है । चौथी अवस्था में रथ को जहाँ-जहाँ आवश्यक हो रस्सियों से कसा जाता था, जिसे जन्दनी या यन्त्रिणी कहा जाता था। रथ चलाने वाले को रथवाह या सारथी कहा जाता था । मज्झिमनिकाय में रथवाह के मुँख से कहलाया गया है कि मैं रथ के बारे में सभी छोटी-बड़ी विषय से परिचित हूँ । धम्मपद के कोधवग्गों में कहा गया है कि बड़े वेग से घूमते हुये रथ को, जो रोक ले उसे मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे लोग तो मात्र लगाम पकड़ने वाले होते है । निदान कथा में रथ को सभी अलंकारों से अलंकित कर चार उत्तम घोड़ों को जोतने[30] तथा सुधाभोजन जातक में रथों को दृढ, मूल्यवान, स्वर्णमय तथा अलंकृत करने का वर्णन है । संयुक्तनिकाय में रथों में अपालम्ब का उल्लेख है, जो यात्री को रथ से निचे गिरने में रक्षार्थ या सहारा देने हेतू लकड़ी के तख्तों का बना होता था । भरहुत एवं साँची के स्तूपों के चित्रों से भी रथ के विभिन्न अंगों की स्पष्ट जानकारी मिलती है । चित्रों से पता चलता है कि तत्कालीन समय में रथ के एक ओर चढ़ने के लिए खुला स्थान रहता था तथा तीन ओर से ढंका रहता था । रथों पर खड़े होकर यात्रा की जाती थी।

पालकी (शिविका): प्राचीन भारत में परिवहन के साधन समाज की संरचना, सामाजिक पदानुक्रम और सांस्कृतिक परंपराओं को प्रतिबिंबित करते थे। जहाँ सामान्य जनता पैदल या पशु-आधारित साधनों का उपयोग करती थी, वहीं राजघरानों, उच्चवर्गीय व्यक्तियों तथा विशिष्ट अतिथियों के लिए पालकी एक प्रमुख और विशिष्ट परिवहन साधन थी। पालकी मानव-शक्ति द्वारा उठाई जाने वाली एक सुसज्जित संरचना थी, जिसका प्रयोग विशेष रूप से महिलाओं, राजाओं, रानियों, अधिकारियों और धार्मिक व्यक्तियों की यात्रा के लिए किया जाता था। पालकी न केवल आवागमन का साधन थी, बल्कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान और वैभव का प्रतीक भी मानी जाती थी। ऐतिहासिक ग्रंथों, यात्रावृत्तों और चित्रात्मक स्रोतों से ज्ञात होता है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में पालकी का व्यापक प्रयोग शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में किया जाता था। इस प्रकार, पालकी प्राचीन भारतीय परिवहन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध साधन रही है। महावेस्सन्तर जातक में एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने-जाने के लिए पालकी का उपयोग करने का वर्णन प्राप्त होता है ।[31] सिवी जातक में पालकी में जाने का वर्णन मिलता है ।[32] यह मनुष्यों द्वारा ढोयी जाती थी । प्राचीन भारत में पालकी, सवारी के मुख्य साधनों में से एक है । महावग्ग में सोण नामक व्यक्ति को मगध राज बिम्बिसार के पास पालकी में बैठकर जाने का वर्णन प्राप्त होता है ।[33] चुल्लवग्ग में काशी कि प्रसिद्द गणिका अडढकाशी को श्रावस्ती, पालकी में बैठकर जाने का उल्लेख मिलता है ।[34] मातङ्ग जातक में वाराणसी सेठ की पुत्री को सोने के पालकी में बैठकर जाने का उल्लेख मिलता है ।[35] अर्थशास्त्र में उत्तमा वेश्या को राजा के साथ पालकी में बैठकर चलने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[36] मेगस्थनीज ने मौर्य शासक चन्द्रगुप्त मौर्य को रत्नों से जड़ित पालकी में बैठकर जाने का उल्लेख किया है । अमरावती स्तूप के चित्रों में भी पालकी का चित्रण हुआ है, जो पालकी सवारी के माध्यम को दर्शाता है । यह खिड़कियों से युक्त आराम देह बैठने की गद्दीवाली सिविका होती

थी। इसके दोनों किनारे पर बाँस या अन्य लकड़ी की डण्डी लगी होती थी, जो पकड़ने के कार्य में आता था। इसको उठाकर कंधे पर रखकर ढ़ोया जाता था।[37] इसको ढ़ोने का कार्य राज्य कर्मचारी या सामान्यजन करते थे। व्यापारी वर्ग इसका प्रयोग स्वयं की सुविधाओं के लिए करते थे।

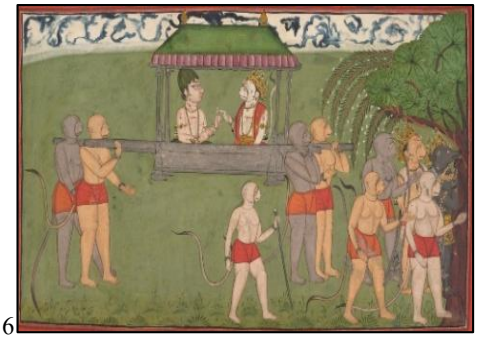

6

तिरुक्कड़ैयूर (तमिलनाडु) के अमृतघटेश्वर अबिरामी मंदिर के गोपुरम का दृश्य

भारवाही मनुष्य: मानव अपने प्रारम्भिक अवस्था में यातायात का स्वयं ही साधन था। पाली साहित्य में मानव द्वारा अपने उपयोग के सामानों को स्वयं ढोने का उल्लेख मिलता है। कहीं–कहीं मजदूरी पर भी दूसरों के भार वहन (ढ़ोने) का वर्णन प्राप्त होता है। संयुक्तनिकाय में श्रेष्ठ भारवाह या भार ढ़ोने में समर्थ व्यक्ति का उल्लेख है।[38] दीघनिकाय में स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारियाँ भारवहन करके जीवन यापन करते थे।[39] विनयपिटक में मानव द्वारा अपने हाथ से खिंची जाने वाली गाड़ी को हत्थवट्टक कहा गया है।[40] बुद्धघोष के अनुसार हत्थवट्टक एक प्रकार का वाहन था जिसे स्त्री–पुरुष अपने हाथ से खींचकर ले जाते थे। चुल्लवग्ग में वर्णित है कि मनुष्य बहँगी पर लोंगों को तथा सामान ढ़ोने का उल्लेख है।[41] हत्थिपाल जातक में बहंगी भारधारी तथा सङखपाल जातक में आठ लोगों द्वारा बहँगी में सामान लेकर जाने का वर्णन प्राप्त होता है।[42] नाठ्ठिनिका जातक में राजकन्या को बहँगी पर ढ़ोने का उल्लेख मिलता है।[43] निदान कथा खारिभार द्वारा बहँगी को कंधे पर रखकर उसके एक छोर पर कुण्डी तथा दूसरे छोर पर अंकुश की पिटारी, त्रिदण्ड इत्यादि को लटका कर चलने का वर्णन मिलता है। साँची स्तूप के पूर्वी द्वार पर प्रदर्शित चित्रों में एक मनुष्य अपने कंधे पर बाँस के डंडे के दोनों सिरों पर लटकते हुए सामानों के गठ्टर को ढ़ो रहा है। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में आज की तरह भारवाही मनुष्य व्यापारिक कार्यों में संलग्न थे।

भारवाही पशु: सवारी एवं भारवाहक के रूप में सबसे अधिक पशुओं का उपयोग किया जाता था। पशुओं द्वारा यान खीचनें के आलावा भारवाहन का भी कार्य किया जाता था। इन पशुओं में बैल, अश्व, हाथी, उँट, खच्चर गदर्भ, भैंसा भेड़ इत्यादि है।

बैल: प्राचीन भारत में बैल शक्ति और सहनशीलता के प्रतीक माने जाते थे। उनकी धीमी परंतु स्थिर गति ने लंबी यात्राओं और व्यापारिक मार्गों को संभव बनाया।

बैल परिवहन ने ग्रामीण जीवन को शहरी केंद्रों से जोड़ने में सेतु का कार्य किया। उनकी उपयोगिता केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक यात्राओं में भी परिलक्षित होती थी।

इस प्रकार बैल परिवहन ने प्राचीन समाज की गतिशीलता और संपर्क व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। बुद्ध काल में व्यापार–वाणिज्य के विकास के साथ ही पशुपालन भी महत्वपूर्ण व्यवसाय बना रहा। व्यापारी वर्ग गाय, बैल एवं खच्चर इत्यादि पशुओं का पालन, व्यापार के लिए करते थे। तत्कालीन समाज में बैल एक व्यापारिक साधन के रूप में अतिमहत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर चुका था। प्रायः यान खीचने वाले पशुओं में बैल सर्वाधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय माना जाता था। बौद्ध साहित्य में बैलों का उपयोग माल ढ़ोने, सवारी करने, बैलगाड़ी तथा रथ खिंचने इत्यादि कार्यों में होने का वर्णन प्राप्त होता हैं। अष्टाध्यायी में बैलों के कार्य के अनुसार उनका वर्गीकरण हुआ है। प्रथम कोटि के बैल रथ खींचने वाले, द्वितीय कोटि के बैल शकट खींचने वाले एवं तृतीय कोटि के बैल हल चलाने वाले होते थे।[44] मिलिन्दपन्हों में बैंल के चार गुणों का उल्लेख मिलता है। इसमें कहा गया है कि जब बैल एक बार गाड़ी में जुत जाता है तो सुख या दुःख से उसे ढ़ोता रहता है।[45] वेरी जातक में एक गाँव वासी को निमंत्रण पर भोजन ग्रहण कर वापस लौटते समय मार्ग में चोरों को देख बैलों को हाँक घर पहुँचने का उल्लेख मिलता है।[46] कण्ह जातक में विषम मार्ग होने के कारण काशी के एक सार्थवाह के बैल उसके गाड़ियों को निकालने में समर्थ न होने के कारण वह दूसरे बैल को किराये पर लेकर अपनी गाड़ियों को निकलवाता है।[47] अंगुत्तरनिकाय में वर्णित है कि काली, लाल या श्वेत गायों से उत्पन्न कोई अच्छा या श्रेष्ठ भार ढ़ोने वाला अच्छी शारीरिक शक्तिशाली बैल ही भार ढ़ोने के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है।[48] जो बैल गाड़ी, रथ खींचते या माल ढोते थे उनकी देखभाल अन्य बैलों से अधिक की जाती थी। आर्थिक एवं व्यापारिक जगत में बैलों के महत्ता के कारण तत्कालीन समय में इनकी चोरियाँ भी होती थी। गामणीचण्ड जातक से विदित होता है कि बैल की चोरी करने वाले पर, राजा ने चौबीस कर्षापण बैल का मूल्य निर्धारित कर जुर्माना भरने का आदेश दिया। व्यवसायी एवं व्यापारियों के वैभव शक्ति के आकलन बैलों की संख्या से आका जाता था। कभी कभी बैलों के बीच प्रतियोगिता भी करायी जाती थी। नन्दिविलास जातक में ऐसी ही प्रतियोगिता का उल्लेख मिलता है कि नन्दीविलास नामक बैल ने अपने मालिक के लिए दो हजार का पुरस्कार जीता था। अर्थशास्त्र में गाड़ी खींचने वाले तथा कृषि कार्य करने वाले बैलों के आहार एवं व्यवहार का भी उल्लेख है। वाट्ठोदक जातक गामणीचण्ड जातक, कलायमुट्ठी जातक तथा मुनिक जातक में भी पशुओं के आहार के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। साँची स्तूप के चित्रों से भी स्पष्ट होता है कि व्यापारी खूब सजे–धजे बैलों पर यात्रा करते थे।

अश्व: बौद्ध कालीन पशुओं में अश्व एक महत्वपूर्ण पशु था। पाली ग्रन्थों में अश्व के विषय में पर्याप्त वर्णन मिलता हैं। इस समय अश्व ऐश्वर्य, शक्ति एवं समृद्धि का प्रतीक माना जाता था तथा युद्ध में यह विजयश्री प्रदायक था। काशी महाजनपद में अश्व यातायात के साधनों में द्रुतगामी साधन है। तत्कालीन समय में अश्व का उपयोग रथों में जोतकर तथा स्वतंत्र रूप दोनों प्रकार से राजकीय, व्यापारिक व दैनिक-जीवन के कार्यों में किया जाता था। इनकी महत्ता के कारण ही महावग्ग में घोड़े के मांस भक्षण का निषेध किया गया है। विनयपिटक में अश्व का राजकीय पशु के रूप में वर्णन मिलता है। अंगुत्तरनिकाय में अश्व के 3 प्रकार बताये गये है- अश्व जो केवल वेगवान् (तेज दौड़ने वाला) होता था लेकिन वर्ण में कुरूप होता है और सवारी योग्य नहीं होता है। द्वितीय अश्व वेगवान् और वर्णवान् होता है परन्तु सवारी योग्य नहीं होता है। तृतीय अश्व वेगवान्, वर्णवान् होता है और सवारी योग्य भी होता है।[49] धम्मपद में प्रशिक्षित सारथी, प्रशिक्षित अश्व जो एक कोड़े की चोट से ही शीघ्र अच्छी गति पकड़ लेता था, का वर्णन मिलता है। कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक में अश्ववणिकों व्यापारियों को घोड़े लेकर वाराणसी में बेचने का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तरनिकाय में वर्णित है कि तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ अश्व ही राजाओं के योग्य होता है। श्रेष्ठ जाति का अश्व वर्ण सम्पन्न, बलशाली, सामर्थ्य तथा वेग युक्त होता है।[51] अतः राजाओं के रखने योग्य एवं राजाओं द्वारा ही भोगने योग्य होता है। पाली साहित्य में ऐसे घोड़ों को अजानेय कहा गया है। अैसे उत्तम जाति के अश्व अर्थात् सैंधव घोड़े कम्बोज, बाल्हीक, सौवीर, सिन्धु एवं तक्षशिला से लाये जाते थे। तण्डुलनालि जातक व सुहनु जातक में उत्तरापथ के अश्व व्यापारियों द्वारा काशी में सैन्धव घोड़े बेचने का वर्णन मिलता है। पाणिनि ने भी सिन्धु पार के घोड़ियों का उल्लेख किया है। सोमदत्त जातक में श्वेत सैन्धव घोड़े पर बैठकर गाँव आने का वर्णन प्राप्त होता है। भोजाजानीय जातक में सैन्धव घोड़े के श्रेष्ठता का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि सैन्धव घोड़े होने पर सात राज्य क्या, सकल जम्बूद्वीप के राजाओं से युद्ध किया जा सकता है। इसी जातक में वर्णित है कि शल्य से घायल होने पर भी एक करवट से सोया हुआ सैन्धव घोड़ा अन्य घोड़ों से श्रेष्ठ है। कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक में सैन्धव घोड़े के श्रेष्ठता का उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि कुण्डखादक सैन्धव बछड़े के निवास स्थान की गन्ध सूंघ के कारण 500 घोड़ो में से एक भी घोड़ा घर में प्रवेश नहीं किया। बौद्ध साहित्य में घोड़ों के आकार-प्रकार के साथ-साथ इनकी शिक्षा, सारथी (अश्ववेग) तथा अश्वशाला इत्यादि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। अर्थकारक नामक राजकीय अधिकारी अश्वों की कीमत लगाने का कार्य करता था। गामणीचण्ड जातक में साधारण घोड़े की कीमत 1000 कषार्पण तथा कुण्डकुच्छि सिन्धव जातक में सैन्धव घोड़े के बच्चे की कीमत 6000 कषार्पण बतायी गयी है। कलायमुट्ठी जातक में घोड़ों के लिए भिगोयी मटर लाकर द्रोणियों में डालने का वर्णन मिलता है। वाट्ठोदक जातक में पेय प्रदार्थ में अंगूर के रस देने का वर्णन मिलता है। भोजाजानीय जातक में सैन्धव घोड़ों को सभी अलंकारों से अलंकृत कर, इन घोड़ों को लाख मूल्य वाली सोने की थाली में विविध श्रेष्ठ रसों से युक्त तथा तीन वर्ष पुराने चावल का बना श्रेष्ठ भोजन दिया जाता था। चार प्रकार के सुगन्धों से लिपि भूमि पर खड़े होते थे तथा खड़े होने के स्थान पर लाल कम्बल की चहारदीवारी के ऊपर, सोने के तारों से खंचित कपड़ों का चंदवा वितान, चारों ओर सुगन्धित पुष्पमालाएँ और सदा सुगन्धित तेल का प्रदीप वहाँ जलाने का वर्णन मिलता है। बौद्ध साहित्य में घोड़ों के आकार-प्रकार के साथ–साथ घोडें की लगाम तथा उसकी पीठ पर बैठे सवार एवं अश्वशाला आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। भरहुत एवं साँची के स्तूपों में भी घोड़ों का उपयोग वाहन एवं रथ खींचने में होता हुआ दिखायी पड़ता है। राजघाट से प्राप्त पुरावशेष से भी अश्व के महत्वपूर्ण उपयोग की पुष्टि होती है।

हाथी (गज): नाट्ठिनिका जातक में हस्तिवाहन का तथा दीघनिकाय[52] में हस्तियान का वर्णन प्राप्त होता है। पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि हाथी की सवारी मुख्यतः राजाओं एवं श्रेणीयों द्वारा किया जाता था। हाथी भी अश्वों के समान राजकीय अधिकार वाला पशु था। यह अपने विशाल आकार एवं अपार बल के कारण राजत्व और समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। मज्झिमनिकाय में सेना के चारकाय में हाथी समूह का वर्णन मिलता है। अंगुत्तरनिकाय में हाथी इसकी वीरता तथा इसके महावत का उल्लेख मिलता है। वहीं मिलिन्दपन्हों में हाथी के पाँच गुणों का उल्लेख किया गया है।[53] बौद्ध साहित्य में मगध शासक अजातशत्रु को हाथी पर सवार होकर नगर से बाहर भ्रमण करने का अनेकशः उल्लेख मिलता है। हाथियों का उपयोग ज्यादातर युद्धों एवं नगर भ्रमण के लिए किया जाता था। राजाओं के दूर की यात्रा में हाथी बराबर उनके संग चला करती थी। महावग्ग में श्रेणीयों के पास हाथियों के संग्रह का वर्णन प्राप्त होता है। जातकों में हस्तिशिक्षक, हस्तिपालक, हस्तिशाला एवं हथवान का अनेकशः उल्लेख है, जो हाथी की सवारी के रूप में प्रयुक्त होने की पुष्टि करता हैं। राजाओं की अपनी हस्ती-शाला होती थी। महावेस्सन्तर जातक में हस्तीवैद्य, हस्तिपरिचायकों तथा हस्तिवाहन का उल्लेख मिलता है।[54] दुम्मेध जातक में हस्तिशिक्षकों का उल्लेख मिलता है। हस्ती पालक हाथियों के भोजन, प्रशिक्षण, चिकित्सा तथा युद्ध के अलंकार आदि के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान रखते हुए उसे परिवहन एवं युद्ध के सवारी के रूप में हमेशा तैयार रखते थे। हाथी सवारी के महत्ता के कारण ही इस समय व्यवसाय के रूप में लोग हस्तिशिक्षक का शिल्प सीखने के लिए उत्सुक रखते थे। सुसीम जातक में हस्ती–मंगलोत्सव होने का उल्लेख मिलता है। सवारी के काम में प्रयोग करने तथा हाथियों के विभिन्न आचरणों के आधार पर आठ प्रकार बताये गये हैं। संयुक्तनिकाय में हाथियों में उपोसथ हाथी के प्रसिद्धि का वर्णन प्राप्त होता है। साधारण व्यक्ति एवं व्यापारी के लिए हाथी पालन करना सरल कार्य नहीं था। भारवहन या यात्राओं के लिए हाथियों का प्रयोग सीमित मात्रा में किया जाता था। इस काल में हा थियों की सवारी लोगों को बहुत पसन्द थी। इनकी प्रसिद्धि तथा राजाओं के प्रिय सवारी के कारण ही तथागत ने भिक्षुओं को हाथी का मांस खाने से मना किया था। प्राचीन भारत के विभिन्न पुरास्थलों के खुदायी से हाथियों के यातायात के साधन में उपयोग होने का उल्लेख मिलता हैं।

गदर्भ (गधा): प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में परिवहन तथा भारवहन के रूप में गदर्भ का उल्लेख मिलता है। इनमें गदर्भो की भूमिका महत्वपूर्ण थी। अष्टाध्यायी में भी गदहों द्वारा सवारी, बोझा ढ़ोने व रथ खीचने का उल्लेख मिलता हैं। जातकों में गदहों को पालने तथा सवारी के रूप में प्रयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है। वाठठोंदक जातक में गधे पर लादकर सामान ढ़ोने का उल्लेख है।[55] सीहचम्म जातक में वाराणसी के बनिया को गधे पर बोझा लाद कर व्यापार करता हुआ धूमने का उल्लेख मिलता है।[56] धमपद्दअट्ठकथा में वर्णित है कि वाराणसी क एक कुम्भकार मिट्टी के बर्तन को गदहों पर लाद कर तक्षशिला की यात्रा करता था।[57] गदहों के लिए खराशाल नामक अलग अस्तबल बनाए जाते थे इससे स्पष्ट है कि गधा यातायात का प्रमुख साधन था। इसका प्रयोग सभी प्रकार के व्यापारी भारवहन के रुप में किया जाता था। दुर्गम एवं पहाड़ी स्थलों में बोझ ढ़ोने का कार्य गदहों से लिया जाता था।

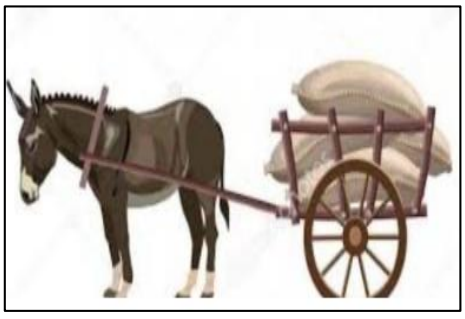

अन्य भारवाही पशु: पाली साहित्य में उपरोक्त पशुओं के अतिरिक्त अन्य भारवाही पशुओं में उष्ट्र या ऊँट, खच्चर, बकरी, भेड़ आदि पशुओं का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में रेतिले सडकों के लिए मरुकान्तार शब्द का प्रयोग किया गया हैं। इस भूमि में परिवहन के साधनों के रूप में उँट ही उपयोगी रहे होंगे तथा सवारी और माल ढुलाई में उँटो का प्रयोग तत्कालीन समय में बहुतायत होता रहा होगा। अष्टाध्यायी में भी उँटो के सवारी का उल्लेख मिलता है। पाणिनि ने

उँटो के समूह को औष्ट्रक, बच्चे को करभ तथा उँट सवारों को उष्टसादी कहा है।[58] संयुक्तनिकाय महावेस्सन्तर जातक तथा निदानकथा में भी भारवाही पशुओं के रुप में खच्चरों का उल्लेख मिलता है। पाणिनि ने खच्चर और उँट की मिली–जुली एक अन्य प्रजाती को उष्टवामी कहा है। बौद्ध साहित्य में भेड़-बकरियाँ पाले जाने का वर्णन प्राप्त होता है । इनका उपयोग भार ढ़ोने में किया जाता था । महानारद–काश्यप जातक में भारवाही बकरे का उल्लेख मिलता है।[59] अजपथ तथा मेढ़पथ इन तथ्यों की पुष्टि करते है कि तत्कालीन समय में इस प्रकार के मार्गों पर केवल बकरे एवं भेड़ ही वस्तुओं को ढ़ोने के लिए उपर्युक्त होते थे।

जलीय साधन: प्राचीन भारत में जल परिवहन केवल आवागमन का साधन मात्र नहीं था, बल्कि वह आर्थिक संरचना, प्रशासनिक व्यवस्था और सांस्कृतिक अंतःक्रिया का एक महत्वपूर्ण आधार था। भारत की भौगोलिक विविधता- जिसमें सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र जैसी विशाल नदियाँ तथा पश्चिमी और पूर्वी समुद्री तट सम्मिलित हैं, ने जल मार्गों के विकास को स्वाभाविक रूप से प्रोत्साहित किया। इन जल मार्गों ने न केवल आंतरिक क्षेत्रों को आपस में जोड़ा, बल्कि भारत को प्राचीन विश्व की अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक प्रणाली से भी संबद्ध किया।

पुरातात्त्विक खोजों से प्राप्त प्रमाण, जैसे गोदी, मुहरें, नौकाओं के अवशेष तथा समुद्री व्यापार से संबंधित सामग्री, यह दर्शाते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज को जल परिवहन की तकनीकी समझ थी। साथ ही वैदिक साहित्य, बौद्ध ग्रंथों, जातक कथाओं और अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों में नौकाओं, जहाज़ों और नदी मार्गों का उल्लेख मिलता है, जो जल परिवहन की सामाजिक और आर्थिक उपयोगिता को रेखांकित करता है । नदियों के माध्यम से कृषि उत्पादों, कच्चे माल और हस्तशिल्प वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था, जबकि समुद्री मार्गों ने भारत को पश्चिम एशिया, भूमध्यसागर और दक्षिण-पूर्व एशिया तथा सिंघलद्वीप आदि देशों से जोड़ा । जलीय साधनों में नावों, महानावों (पोतों) तथा जहाजों का प्रयोग आन्तिक तथा वाह्य प्रयोजनों से परिवहन में व्यापार–वाणिज्य करने तथा एक जगह से दूसरे जगह आने–जाने में किया जाता था। प्राचीन भारत में जलपरिवहन के साक्ष्यों में इन सभी जलीय साधनों के प्रयोगं के साक्ष्य प्राप्त होतें हैं तथा इन साधनों द्वारा आन्तिक व वाह्य यातायात होता था । सामुद्रिक व्यापार के लिए जलयानों तथा सामान्य उपयोग के लिए जिन नावों का उपयोग किया जाता था, उन्हें क्रमशः पोत तथा नौका कहा जाता था। कौटिल्य ने कुलपथ और संयानपथ दो जलमार्गों का उल्लेख किया हैं।[60] कुलपथ नदियों के किनारे के मार्ग को कहा गया हैं जिनके किनारे व्यापारिक नगर बसे हुए थे इसलिए इसे उत्तम भी कहा गया हैं तथा संयानपथ समुद्री मार्ग को कहा गया है। इन जलीय साधनों का विस्तृत विवरण निम्लिखित हैं –

नौकाएँ: जलपरिवहन के प्रमुख साधनों में नौकाओं का विशेष स्थान हैं। बौद्ध साहित्य में नाव इसके प्रयोग, निर्माण की प्रकिया तथा इससे जुड़े सूचनाओं का व्यापक उल्लेख मिलता है । छद्दंत जातक, महाकपि जातक, भूरिदन्त जातक, सुसोन्दी जातक, धम्मध्दज जातक, चतुद्वार जातक, संख जातक, पण्डर जातक तथा महावग्ग में जल में तैरने वाले साधन को नाव कहा गया हैं और नावटठ उस नौका का विशेष नाम हैं जिस पर सामान लादा जाता हैं। दीघनिकाय में समुद्र, नदी तथा छोटी-बड़ी झील को पार करने के लिए नाव का उल्लेख मिलता है ।[61] संयुक्तनिकाय में नावों में बैठकर यात्रियों के एक दल को नदी के उस पार जाने का उल्लेख मिलता है ।[62] मज्झिमनिकाय में गहरे जलतट का उल्लेख मिलता हैं जिसे नाव तथा पुल की सहायता के बिना पार करना असम्भव था और इन साधनों के आभाव में तट को पार करने में मनुष्य असमर्थ होता था ।[63] नावों का उपयोग सामान्यतया जल में परिवहन के रूप में किया जाता था। इनका उपयोग नदी एवं समुद्र मार्गों में होता था। अष्टध्यायी में पानी में चलने वाले वाहनों को उदकवाहन कहा गया हैं जो नावों का ही पर्याय हैं। पाली साहित्य में नावों के अलग–अलग नामों का उल्लेख मिला हैं जैसे नाव, महानाव और पोत इनके उल्लेख से क्रमशः छोटे, मध्यम और बड़े आकार की नावों का अनुमान लगाया जा सकता हैं । दीघनिकाय में गंगा पार करने के लिए छोटी नाव (उडुम्प), बड़ी नाव का वर्णन प्राप्त होता है । मिलिन्दपन्हों में अत्यंत छोटी नाव का उल्लेख मिलता है जिसमे केवल एक आदमी बैठ सके। बुद्धचर्या में वर्णित है कि एक बार आन्नद पाँच सौ भिक्षुओं के साथ एक बड़ी नाव द्वारा कौशाम्बी गये। महावग्ग में वर्णित है कि बुद्ध जब गंगा तट पर आये तो नदी पार करने के लिए कुछ लोग नाव, उलुम्प एवं कुल्ल की व्यवस्था करते हैं[64] परन्तु इनमें क्या अन्तर था ? इसका उल्लेख इस साहित्य में प्राप्त नहीं होता है। महावग्ग का उलुम्प पाणिनि के ग्रन्थ में उल्लेखित उलुम्प हो सकता है, जिसे वासुदेव शरण अग्रवाल ने छोटा नाव कहा है । अष्टाध्यायी में उत्संग (छोटी डोंगी), पिटक (चमड़े की ढंकी हुई टोकरी), उत्पत (लम्बी मछली मारने की नाव), तथा भस्त्रा (पशुओं की फुलाई हुई खाल) आदि प्रकारों के नावों का उल्लेख है। पाली साहित्य में कुल्ल को घास, काठ, वृक्ष की डाली मिलाकर बनाया गया साधन माना गया हैं । प्रायः व्यापारिक कार्य बड़ी नावों में ही किया जाता था क्योंकि बड़ी नाव मजबूत एवं काफी जगह वाली होती थी। बड़ी नावों में एक साथ कई लोगों के बैठने के अतिरिक्त माल रखने के लिए जगह होती थी। समुद्दवणिज जातक में वाराणसी के हजार परिवार वाले बढ़इयों को नौका द्वारा दूसरे द्वीप जाने का उल्लेख मिलता है। महाजनक जातक में 100 आदमियों के साथ नाव में बैठकर जाने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों, अभिलेखों मुद्राओं तथा ग्रंथों में नाव का उल्लेख प्राप्त होता है, इन विवरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में नवपरिवहन क्षेत्र में छोटी–बड़ी नावों का उपयोग किया जाता था।

वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी के सिक्को पर डबल मस्तूल वाले नाव का अंकन

महानाव (पोत): महानाव या पोत समुद्रों में चलने वाली बड़ी–बड़ी नौकाएँ होतीं थी, जिनका संचालन समुद्री व्यापार के लिए किया जाता था। इन महानावों या पोतों के माध्यम से प्राचीन भारत का लंका (सिंघल द्वीप), सुवर्णद्वीप (म्यांमार, जावा, सुमात्रा) कम्बोडिया तथा पश्चिम एशिया के अनेक देशों के साथ व्यापार होता था। कभी-कभी इन पोतों में 500-100 यात्रियों को बैठ कर यात्रा करने का उल्लेख मिलता हैं । इन जहाजों पर व्यापारियों के साथ पशु–पक्षियों सहित काफिले यात्रा पर जाते थें। कुछ पोतों की बनावट ऐसी थी, जिनमें माल रखने और यात्रियों के बैठने के लिए अलग–अलग कक्ष बनाये गये थे। इन कक्षों की संख्या लगभग तीन सौ के आसपास थी। महासमुद्र में पोत का संचालन करने वाले नवचालक अत्यंत कुशल नाविक होते थे। वे वायु की सहायता से अपने पोत को

चलाते थे। बड़ी–बड़ी नावों का संचालन एक से अधिक चालकों द्वारा होता था। अवदानशतक से ज्ञात होता है कि बड़े पोतों का संचालन पाँच श्रेणी के चालकों द्वारा किया जाता था। इनमें से केवल चार अहर, नाविक, केवत तथा कर्णधार का उल्लेख मिलता है।[65] मिलिन्दपन्हों में भी नाविक, केवट तथा कर्णधार पर प्रकाश पड़ता हैं।[66] कर्णधार के तीन गुणों का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि ये रात दिन हमेशा लगातार अप्रमत्त होकर तत्परता से नाव को रास्ते पर ले जाते है। द्वितीय इसको मालूम होता है कि कहाँ खतरा है कहाँ नहीं तथा तृतीय यह अपने कल-पुर्जे को ताला लगाकर रखते है कि कोई छू-छा न करे। अर्थशास्त्र में भी पाँच प्रकार के अधिकारीयों का उल्लेख मिलता है। रश्मिग्राहक, कप्तान, दात्रग्राहक उत्सेयक (पानी बाहर निकालने वाला) तथा नियामक (परिचालक) ये सभी कर्मचारी महानाव का संचालन करते थे।[67] ये सभी चालक संभवतः एक जलनियामक या जेठ्टक के निर्देशन में कार्य करते थे। सुप्पारक जातक में सुप्पारक कुमार पोत संचालन (निय्यामकसुत्त) की विद्या में कुशलता प्राप्त कर अपनी श्रेणी का प्रमुख बन गये थे।[68] जहाजों एवं महानावों के समूह को नावसार्थ कहा जाता था। जहाजें और नावें राज्य द्वारा संगठित और अधिकृत की जाती थीं। बौद्ध काल में जल परिवहन के विकसित अवस्था का विवरण प्राप्त होता हैं। चुल्लसेट्ठी जातक में जलपथ कार्मिक द्वारा नावों के आने-जाने का पूर्ण जानकारी प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में जल परिवहन राज्य द्वारा संचालित होता था। नवाध्यक्ष नामक राजकीय अधिकारी द्वारा नवपरिवहन नियंत्रित होता था। यह अधिकारी जलमार्गो की निगरानी, जलयानों का निर्माण, बन्दरगाहों की देखरेख तथा जलमार्गों के व्यापारियों से कर संग्रह करता था। माल लेकर जाने वाली नौकाएँ समूह बनाकर चलती थीं तथा दो या दो से अधिक नौकाओं से लाया हुआ माल द्विनावमय या द्विनावरूप्य कहलाता था। पाँच नाव चलाने वाले व्यापारी पंचनावधन कहलाते थे। एक व्यापारी के पास एक से अधिक नाव होने का उल्लेख मिलता हैं। क्षतिगस्त नावों पर नवाध्यक्ष पिता की तरह व्यवहार करता था तथा उसे कर मुक्त कर देता था।

तत्कालीन समय में नाव, महानाव के निर्माण में बहुत उन्नति हुई थी। इन नावों का निर्माण प्रायः लकड़ी के कार्य करने वाले बढ़ई करते थे। नट्ठिनिका जातक में बढ़ईयों को लकड़ियों को बाँध नौका बनाने का वर्णन प्राप्त होता है। समुद्दवणिज जातक में काशी के बढ़ईयों को जंगल में जाकर लकड़ी काटने और इसको लाकर नौका बना कर दूसरे द्वीप जाने का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपन्हों में अनेक प्रकार के लकड़ियों को जोड़कर नाव तैयार करने का वर्णन प्राप्त होता है। छद्दन्त जातक में लकड़ी के तख्ते बाँध कर नौका बनाने का उल्लेख मिलता है। इनका निर्माण लकड़ी के तख्तों की सहायता से किया जाता था जिन्हें पदराणी कहते थे, जो रज्जु (योत्तानी) द्वारा बँधे होते थे। एक जहाज में रस्सी (योत्तानी), पाल (सित), डाँड और बड़ी–बड़ी पतवारें (फियारितानी), मस्तूल (कूपक), लंगर (लकार) होती थीं। परन्तु कभी–कभी इन जहाजों में दो या तीन मस्तूल भी होते थे। महाजनक जातक के कथा में तख्तें के टूट जाने के कारण नाव में पानी भरने तथा मस्तूल के सहारे खड़ा होने तथा नौका के डूबने के समय मस्तूल पर चढ़कर कूदने का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपन्हों में लंगर की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है जिससे ज्ञात होता है कि यह नाव को एक जगह स्थायी खड़ा करने में सहायता करता था। मिलिन्दपन्हों में पतवार में रस्सी, चमड़े के बन्धन तथा लराक लगे होने का उल्लेख मिलता हैं।[69] नवपरिवहन की पुष्टि तत्कालीन कालावशेषों में नावों एवं जलयानों के चित्रण से भी होता है ईस्वी-पूर्व द्वितीय शताब्दी के भरहुत स्तूप के चित्रों में नाव का चित्रण मिलता है जिसका अगला और पिछला भाग नुकीला है। इस जलयान को तीन नाविकों द्वारा संचालित करते हुए दिखाया गया है। जलयान अत्यंत पुरानी विधि के आधार पर निर्मित दिखाई पड़ती है। इसे बनाने के लिए नारियल की जटा से सिले तख्ते काम में लाये गये है। साँची स्तूप में दो जगह पर नावों का चित्रण मिलता हैं। एक चित्र में नदी पर चलती हुई तख्तों से बनी हुई नाव दिखलाई गई हैं। दूसरतख्ते, रज्जु (रस्सी) से सिले जाने चाहिये, उनमें लोहें का कील न लगाया जाय क्योंकि लोहे, समुद्री चुम्बकीय चट्टानों द्वारा प्रभावित हो जायेंगे। डॉ लल्लन जी गोपाल का विचार है कि तख्तों को जोड़ने के लिये लोहे की कील का बाद के समय में भी प्रयोग नहीं किया जाता था।

साँची स्तूप के तोरण पर नाव का अंकन

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारत में परिवहन के साधन सरल होते हुए भी अत्यंत प्रभावी थे। स्थलीय परिवहन में पैदल यात्रा, बैलगाड़ी और रथ का प्रमुख स्थान था, जबकि जलीय परिवहन में नदियों और समुद्री मार्गों का व्यापार एवं आवागमन के लिए व्यापक उपयोग किया जाता था। इन साधनों ने प्राचीन भारत के व्यापार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सामाजिक जीवन को समृद्ध बनाया। वर्तमान समय में भले ही परिवहन के साधन आधुनिक और तेज हो गए हों, परंतु उनकी नींव प्राचीन काल में ही रखी गई थी। आज के उन्नत परिवहन साधन उसी ऐतिहासिक विकास यात्रा का परिणाम हैं, जो मानव की निरंतर प्रगति को दर्शाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सांस्कृत्यायन राहुल, विनय पिटक, महाबोधि सभा सारनाथ, प्रथम संस्करण 1935, पृ. 536
2. शास्त्री द्वारिका दास, दीघनिकाय, (संपादक व हिन्दी अनुवादक), बौद्ध भारती वाराणसी, द्वितीय संस्करण 2009, भाग 3, पृ. 753
3. पूर्वोक्त, भाग 2, पृ. 566
4. कौशल्यायन भदन्त आनन्द, जातक-अट्ठकथा, हिन्दी साहित्य समेल्लन प्रयाग, प्रथम संस्करण 2011, भाग 5, पृ. 390
5. काश्यप जगदीश भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, सुगत प्रकाशन नागपुर महाराष्ट्र, चतुर्थ संस्करण 1995, पृ. 384
6. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 1, पृ. 265
7. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पूर्वोक्त, पृ. 85
8. शास्त्री, दीघनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 2, पृ. 389
9. शास्त्री द्वारिका दास, अंगुत्तरनिकाय (संपादक व अनुवादक), बौद्ध भारती वाराणसी, 2009, भाग 4/5, पृ. 217
10. श्रीवास्तव जान्हवी, प्राचीन भारतीय व्यापार, वरुण प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 41
11. पूर्वोक्त
12. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 1, पृ. 265-66
13. पूर्वोक्त, भाग 6, पृ. 334
14. पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 220
15. शास्त्री, संयुक्तनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 98
16. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पृ. 243-44
17. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना 1953, पृ. 236-37
18. कौशल्यायन, पूर्वोक्त जातक भाग 7, पृ. 9
19. पूर्वोक्त, भाग 7, पृ. 126
20. पूर्वोक्त, भाग 5, पृ. 146
21. अग्रवाल वासुदेव शरण, पाणिनिकालीन भरतवर्ष, चौखम्भा विद्याभवन द्वितीय संस्करण, 1969, पृ. 150

22. शास्त्री द्वारिका दास, मज्झिमनिकाय, (संपादक व अनुवादक), बौद्ध भारती वाराणसी, भाग 1/2, पृ. 181
23. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 5, पृ. 26-27
24. पूर्वोक्त, भाग 7, पृ. 231
25. पूर्वोक्त, पृ. 75
26. पूर्वोक्त, भाग 4, पृ. 300
27. शास्त्री, अंगुत्तरनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1/2/3, पृ. 149
28. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 4, पृ. 477
29. शास्त्री, अंगुत्तरनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1/2/3, पृ. 149
30. तिवारी, निदान कथा, पूर्वोक्त, पृ. 147
31. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, भाग 6, पृ. 176
32. पूर्वोक्त, भाग 5, पृ. 87
33. सांस्कृत्यायन, विनयपिटक, पूर्वोक्त, पृ. 199
34. पूर्वोक्त, पृ. 537
35. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 5, पृ. 54
36. आचार्य दीपंकर, कौटिल्य कालीन भारत, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ, प्रथम संस्करण 1968, पृ. 134
37. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पूर्वोक्त, पृ. 138
38. शास्त्री, संयुक्तनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 47
39. शास्त्री, दीघनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 3, पृ. 753
40. सांस्कृत्यायन, विनयपिटक, पूर्वोक्त, पृ. 536
41. पूर्वोक्त, पृ. 444
42. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 5, पृ. 168
43. पूर्वोक्त, पृ. 387
44. अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पूर्वोक्त, पृ. 154-55
45. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पूर्वोक्त, पृ. 383-84
46. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 2, पृ. 4
47. पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 265
48. शास्त्री, अंगुत्तरनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1/2/3, पृ. 214
49. पूर्वोक्त, भाग 1/2/3, पृ. 376-77
50. कौशल्यायन, पूर्वोक्त जातक भाग 3, पृ. 18
51. शास्त्री, अंगुत्तरनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1/2/3, पृ. 321
52. शास्त्री, दीघनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 3, पृ. 753
53. शास्त्री, अंगुत्तरनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 3/4, पृ. 162
54. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, भाग 2, पृ. 47
55. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 2, पृ. 243
56. पूर्वोक्त, पृ. 259
57. उपाध्याय भरत सिंह, बुद्धकालीन भूगोल, पूर्वोक्त, पृ. 471
58. अग्रवाल वासुदेव, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पूर्वोक्त, पृ. 155
59. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 6, पृ. 353
60. आचार्य, कौटिल्य कालीन भारतवर्ष, पूर्वोक्त, पृ. 34
61. सांस्कृत्यायन, विनयपिटक, पूर्वोक्त, पृ. 141
62. शास्त्री, संयुक्तनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 101
63. शास्त्री, मज्झिमनिकाय, पूर्वोक्त, भाग 1/2 पृ. 195
64. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पूर्वोक्त, पृ. 243
65. श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय व्यापार, पूर्वोक्त, 368-69
66. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पूर्वोक्त, पृ. 368-69
67. आचार्य , कौटिल्य कालीन भारत, पूर्वोक्त, पृ. 34
68. कौशल्यायन, पूर्वोक्त, जातक भाग 5, पृ. 419
69. भिक्षु, मिलिन्दपन्हों, पूर्वोक्त, पृ. 66